National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 213-217
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Apurba Halder
Ph.D Research Scholar
Department of Sanskrit
Himachal Pradesh University
Summer Hill, Shimla-171005

Correspondence:
Apurba Halder
Ph.D Research Scholar,
Department of Sanskrit,
Himachal Pradesh University,
Summer Hill, Shimla-171005

राजयक्ष्मा रोग तथा उसका उपचार (चरकसंहिता के संदर्भ में)

अपूर्बा हलदर

सारांश

वर्तमान में राजयक्ष्मा टी०बी० अथवा ट्यूबरक्यूलोसिस नाम से जाना जाता है। इसके अलावा क्षय, शोष, तपेदिक आदि नामों से भी परिचित है। आधुनिक औषधि विज्ञान के जनक व यूनान के महान वैज्ञानिक हिप्पोकिट्स ने इसे 'थाइसिस' का नाम दिया, जिसका अर्थ होता है क्षय (Decay)। टी०बी० एक संक्रामक बीमारी है, इससे पीड़ित व्यक्ति शारीरिक रूप से अत्यन्त दुर्बल हो जाता है तथा विभिन्न प्रकार के भयानक रोगों का शिकार हो जाता है। यह रोग सदियों से मानव के स्वास्थ्य का शत्रु रहा है, जो समाज के लिये सबसे बड़ा अभिशाप है। यह व्याधि संसार में प्राय: सभी जगह पाई जाती है। इसे मनुष्यों में होने वाले प्राचीनतम रोगों में एक माना गया है। वेद और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका विस्तृत विवरण मिलता है। उनमें से एक है 'चरकसंहिता' नामक आयुर्वेदिक ग्रन्थ, जिसमें इस रोग की उत्पत्ति, कारण, पूर्वरूप आदि के सहित उपचार का साधन भी प्राप्त होता है।

शब्द संकेत : यक्ष्मा रोग, उत्पत्ति, कारण, पूर्वरूप, सम्प्राप्ति, रूप, उपचार (खान-पान, स्वेद, आलेपन, प्रदेह, नस्य, वमन-विरेचन, घृतपान, लेह, दैवी चिकित्सा और पथ्य)।

उत्पत्ति

ऋग्वेद संहिता के अनुसार यह अज्ञातयक्ष्मा अथवा राज्यक्ष्मा रोग पाप-ग्रह आदि के कारण उत्पन्न होता है। प्राचीनकाल आर्यावर्त में सर्वप्रथम यह रोग राजा चन्द्र को हुआ था ओर उसकी बीमारी अश्विनी कुमार नामक वैद्यों की चिकित्सा से ठीक हुई थी, जैसा कि तैतिरीयसंहिता में कहा गया है। यथा-प्रजापति के 33 पुत्रियां थी। वे इन सभी को राजाचन्द्र के साथ ब्याह दिये। चन्द्रमा अपनी स्त्री रोहिणी में विशेष संभोगासत्त होकर यक्ष्मा रोग से पीड़ित हुए। यही यक्ष्मा रोग की प्रथमोत्पत्ति कही गई है।[2]

गरुड़महापुराण के अनुसार यह रोग पूर्वकाल में आकाश द्विजो तथा नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा को हुआ था। राजा को होने के कारण इसे राजयक्ष्मा कहते हैं। इस रोग की उत्पत्ति के कारण देह तथा औषधि का क्षय हो जाता है। इसलिये इसे क्षय रोग कहते हैं। यह देह के रसों का शोषरोग होने के कारण शोष कहा जाता है। यह सभी रोगों में प्रधान है, अत: इसे रोगराज कहते है।[3]

इसी भयानक बिमारी के कारण राजा अग्निवर्ण की मृत्यु हुई थी।[4] चरकसंहिता में यक्ष्मा रोग की प्रथमोत्पत्ति चन्द्रमा के सम्बन्ध में है। उनके काम में व्यसन से युक्त पौराणिक कथा को देवताओं के द्वारा ऋषियों ने सुना था। वह कथा इस प्रकार से प्राप्त होता है कि यक्षप्रजापति की 28 कन्याओं को चन्द्रमा ने भार्यारूप में स्वीकार किया था। उन 28 कन्याओं में से केवल रोहिणी नामक भार्या में अधिक आसक्त होकर अपने शरीर की रक्षा चन्द्रमा ने नहीं की, फलस्वरूप उनके शरीर का स्नेह भाग शुक्र का क्षय हो गया, जिससे उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। इसके बाद शेष बची हुई स्त्रियों ने अपने पिता दक्ष प्रजापति के पास जाकर चन्द्रमा की इस प्रकार अपनी उपेक्षा की नीति को बताया। उस समय अपनी 27 पुत्रियों का उपभोग न करने से क्रोधित उस दक्षप्रजापति के श्वास से देहधारी क्रोध उनके मुख से निकला, क्योंकि चन्द्रमा ने उनकी 28 कन्याओं को स्त्री के रूप में ग्रहण किया था,

परन्तु 27 के साथ अन्याय किया था। अत: अपनी स्वीकृत स्त्रियों में समता का व्यवहार न करने वाले चन्द्रमा को गुरु (दक्षप्रजापति) ने शाप दे डाला। फलस्वरूप रजोगुण से युक्त निर्बल चन्द्रमा में क्रोध-स्वरूप देहधारी उस व्यक्ति ने रोग के रूप में प्रवेश कर लिया और चन्द्रमा रोग से पीड़ित हो गए।[5] इस पौराणिक कथा के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि अपने शरीर की रक्षा न करते हुए अत्यन्त कामासक्त होने के कारण जब शरीर का स्नेहांश (शुक्र) क्षीण हो जाता है तो यह रोग शरीर में प्रवेश कर जाता है। अत: राजयक्ष्मा का प्रधान कारण धातु का क्षय होना माना जाता है।[6] इस रोग का पर्याय क्रोध, यक्ष्मा, ज्वर और दु:ख आदि प्राप्त होता है-

क्रोधे यक्ष्मा ज्वरो रोग एकार्थो दु:खसंज्ञक:।[7]

कारण

आचार्य सुश्रुत के अनुसार विभिन्न कारणों से कुपित हुये दोषों के शरीर में व्याप्त होने पर मानव के रसादिशुक्रान्त धातुओं के क्षय, वेगों (वात-मल-मूत्रादि) के अवरोध, आघात (मानसिक व शोक आदि) से तथा विषम भोजन करने से यक्ष्मा रोग की उत्पत्ति होती है।[8] महर्षि हारीत का कहना है कि कसरत, असवारी, मैथुन, व्रण आदि विविध रोग, क्षीण देह, क्रोध व अतिशोक आदि से यह रोग होता है।[9] आचार्य वाग्भट ने भी सुश्रुताचार्य के उक्त भाव के समान ही अपना मत प्रकट किया है।[10] चरकसंहिता में मल-मूत्रादि के आगत वेगों को रोकना, अधिक कार्य, धातुओं के क्षय व विषम भोजन, ये चार कारण उल्लेख है-

अयथाबलमारम्भं वेगसंधारणं क्षयम्।
यक्ष्मण: कारणं विद्याच्चतुर्थं विषमाशनम्।।[11]

(क) अयथाबल आरम्भ (साहसिक) जनित कारण

अपनी शक्ति से अधिक शक्ति (बल) वाले पुरुष से युद्ध करना, अत्यधिक भार उठाना, लङ्घन (कूदना), प्लवन (तैरना), ऊँची जगह से गिर जाना, चोट लगना अथवा अन्य दूसरे प्रकार के अत्यधिक साहस जो अपनी शक्ति (बल) से अधिक हो, उसके करने से मनुष्य के उर:प्रदेश (फुफ्फुस) के कट जाने पर कुपित वायु, पित्त और कफ को उभार कर शरीर के विभिन्न प्रदेशों में दौरा करती है। जब वह कुपित वात, पित्त और कफ को लेकर शिर:प्रदेश में स्थिर होती है तो शिर:शूल, गले में स्थित होती है तो कण्ठोदध्वंस (कण्ठ का विकृत), कास, स्वरभेद, अरोचक एवं पार्श्व में स्थित होती है तो पार्श्वशूल आदि होता है। इस प्रकार अधिक साहस करने से उत्पन्न राजयक्ष्मा इन उपर्युक्त लक्षणों के साथ उत्पन्न होता है।[12]

(ख) वेगसंधारणजन्य कारण

जब पुरुष लज्जा या घृणा अथवा भय के कारण,आई हुई अपानवायु, मूत्र, मल के वेगों को रोक लेता है तो वेगों को रोकने से कुपित वायु, पित्त और कफ को उभारती हुई शरीर में ऊर्ध्व, अध: व तिर्यक प्रदेश में गमन कर रोगों को उत्पन्न करती है, जैसे-प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरोचक आदि। ये सभी रोगादि लक्षणों के सहित मानव के शरीर में यक्ष्मा दिखाई देती हैं।[13]

(ग) धातुक्षयजन्य कारण

इर्ष्या (द्वेष), उत्कण्ठा, भय, त्रास (अन्त:भय), क्रोध और शोक आदि द्वारा जिन लोगों का शरीर अति कृश हुआ रहता है, उन व्यक्तियों के शरीर में तथा जो व्यक्ति अधिक मैथुन और अधिक उपवास करते हैं उनके शरीर में शुक्र और ओज की हानि (क्षय) हो जाती है। शुक्र और ओज ही शरीर के मुख्य स्नेहांश है, उस स्नेह के क्षय हो जाने से वायु वृद्ध हो जाती है और पित्त एवं कफ को उभार कर सारे शरीर प्रदेश में गमन करती हुई प्रतिश्याय, ज्वर, कास, अङ्गमर्द आदि रोगों के लक्षणों को उत्पन्न करती है। ये लक्षण मनुष्यों में धातुक्षयजन्य राजयक्ष्मा को सूचित करते हैं।[14]

(घ) विषमाशनजन्य राजयक्ष्मा के कारण

अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों का विषम रूप से सेवन करने वाले व्यक्तियों के शरीर में कुपित वात, पित्त, कफ भयंकर विषम रूप से अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार विषम रूप के आहार का सेवन करने से विषम हुए वातादि दोष रक्तवाहिनी आदि स्रोतों को रोक कर यक्ष्मा रोग को उत्पन्न करते है।[15]

पूर्वरूप

आचार्य सुश्रुत के कथनानुसार श्वास, अंगों में पीड़ा, मुख से कफ का निकलना, तालु का सूखना व वमन आदि ये सभी उत्पन्न होने वाले शोष (यक्ष्मा) के पूर्वरूप के लक्षण होते है।[16] महर्षि भेल ने कहा है कि इस रोग के पूर्वरूप में नासा स्राव, प्रतिश्याय, स्वरभेद और शिर:शूल रहता है।[17] अष्टांगहृदय में महर्षि भेल के समान ही मत उल्लेख प्राप्त होता है।[18] चरकसंहिता के अनुसार प्रतिश्याय, दौर्वल्य, दोषरहित वस्तुओं में भी दोष का दिखाई पड़ना, शरीर में बीभत्सता अर्थात् शरीर के स्वच्छ रहने पर गन्दा प्रतीत होना, प्रत्येक वस्तुओं में घृणा, उचित भोजन करने पर भी बल और मांस का क्षय, स्त्री (मैथुन), मद्य, मांससेवन में अधिक रूचि रखना और अपने शरीर को उत्तम वस्त्रों से ढके रखने की अधिक इच्छा रखना और केश, नख का अधिक मात्रा में बढ़ना आदि लक्षण राजयक्ष्मा का पूर्वरूप होता है।[19]

सम्प्राप्ति

सुश्रुतसंहिता[20] तथा माधवनिदान[21] के अनुसार कफप्रधान दोषों के द्वारा रसवाही स्रोतों के अवरुद्ध हो जाने पर अथवा अतिमैथुन करने वाले व्यक्ति का वीर्य क्षीण होने के अनन्तर सभी धातुओं का क्षय होता है, जिसके कारण वह व्यक्ति शोष (यक्ष्मा) को प्राप्त होता है। चरकसंहिता में कहा गया है कि स्रोतों के रूक जाने से, रक्त आदि धातुओं के क्षीण होने से और धातुओं की उष्णिमा के घट जाने के कारण राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है-

स्रोतसां संनिरोधाच्च रक्तादीनां च संक्षयात्।
धातूष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्मा प्रवर्तते।[22]

यक्ष्मा के रूप

आचार्य सुश्रुत[23] तथा वाग्भट[24] के मतानुसार इस रोग में त्रिदोषजन्य ग्यारह रूप प्राप्त होता है। चरकसंहिता में भी यक्ष्मा के एकादश रूप उपलब्ध है। यथा (1) कास (2) अंसताप (अंसरूजा) (3) स्वरभेद (4)

ज्वर (5) पार्श्वशूल (6) शिर:शूल (7) रक्तवमन (8) कफ का वमन (9) श्वास (10) अतिसार (11) अरूचि-ये ग्यारह लक्षण होते हैं। इनमे से छ: लक्षण, जैसे-कास, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, अतिसार और अरूचि प्रधान हैं। सामान्यत: पहले 6 रूप ही यक्ष्मा में पाये जाते हैं।[25] जब दोषों की प्रबलता होती है तब 11 लक्षण उत्पन्न होते हैं।[26] यक्ष्मा में श्वास, कासादि इन सभी व्याधि की सम्प्राप्ति तथा कारण महर्षि चरक ने वर्णन किया है।[27] इसके सिवाय यक्ष्मा-पीड़ित व्यक्ति में अंस और पार्शों में अभिताप, हाथ और पैरों में दाह सम्पूर्ण शरीर में ज्वर, ये तीन लक्षण सामान्य रूप से पाये जाते हैं-

अंसपार्श्वाभितापश्च संताप: करपादयो:।
ज्वर: सर्वाङ्गश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मण:।।[28]

यक्ष्मा रोग का उपचार

यजुर्वेद भाष्य में अमीवा एवं यक्ष्मा को अत्यन्त भयङ्कर व्याधि के रूप में स्वीकारा है।[29] अथर्ववेद में इस महान् यक्ष्मा रोग को नाश करने के लिये अग्नि देव को सम्बोधन किया गया है।[30] सुश्रुताचार्य के अनुसार इस रोग में द्राक्षा, शर्करा, पिप्पली का अवलेह मधु और तैल के साथ सेवन करना चाहिये।[31] महर्षि भेल के विचार में बिलेशय घृत, तिलसर्पि मोदक, अश्वत्थमुलादि मोदक व शतपाक मधुक तैल आदि अत्यन्त उपयोगी है।[32] काश्यप ऋषि का कहना है कि यदि इस रोग को हुए 12 वर्ष से अधिक समय हो गया हो तो रोगी को स्नेहन, स्वेदन तथा शोधन (पंचकर्म द्वारा) करके दूध के साथ पिप्पलियों का सेवन करना चाहिये।[33] शार्ङ्गधर के कथनानुसार काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा जीवन्ती व मुलेठी आदि जीवनीयगण यक्ष्मा, शोष व ज्वर आदि रोग में उत्तम है।[34] भावमिश्र ने कहा कि षड़ङ्गयूष अथवा मांसरस, सितोपल व जातीफलादि चूर्ण, लाक्षादितैल और वासावलेह भी इस रोग को नाश करने में सक्षम है।[35] अग्निपुराण के अनुसार क्षीरकाकोली, पीपरि व आडूस का कल्क से घृत पकाकर रोगी को पिलाना चाहिए[36] किंवा योगतरंगगिणी में उल्लिखित दश औषधों से सिद्ध करके बकरी का घी अथवा वासाघृत वा षट्पलघृत राजरोग वाले को देना हितकर है।[37] भैषज्यरत्नावली में बलामूल, असगन्ध, गम्भार के फल, शतावर तथा पुनर्नवा का चूर्ण दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए[38] तथा योगरत्नाकर में धनियां, पीपरि, सोंठि और दशमूल का क्वाथ पान करने के लिये बताया गया हैं।[39] द्रव्यगुण विज्ञानग्रन्थानुसार गम्भारी का फल उर:क्षत तथा क्षयरोग में[40] एवं निघण्टु-अदर्श के अनुसार द्राक्षा के मधुर रस यक्ष्मादि रोग में प्रयुक्त होता है।[41] महर्षि चरक का कहना है कि सभी प्रकार के राजयक्ष्मा रोग त्रिदोष से ही होते हैं। अत: वैद्य को चाहिये कि यक्ष्मा रोग में दोषों के बलाबल का विचार कर उनकी अवस्था के अनुसार यक्ष्मा रोग की चिकित्सा करे।[42]

खान-पान

आचार्य वाग्भट के मत में शालिधान्य, साठी चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, जल्दी पचने वाला अन्न, बकरी का दूध, घी, पशु-पक्षियों का मांस आदि रोगी को देना चाहिये।[43] महर्षि चरक के विचार में लावा, तीतर, मुर्गा और बटेर के मांसों को घृत में पका कर लवण, अम्ल, कटु रस से युक्त कर गरम-गरम रस रोगियों को पीने को दे। अर्थात् लवा, तीतर आदि के मांस को घी में पकाने के बाद सैन्धव लवण, नींबू कर रस, काली मिर्च मिलाकर गरम मांसरस को पीने के लिये देना चाहिये। पीपर, जौ, कुल्थी, सोंठ, खट्टे अनारदाने का रस, आँवला इन द्रव्यों के साथ प्रभूत मात्रा में घृत द्वारा सिद्ध बकरे के मांसरस को पीना चाहिये। मूली और कुल्थी का विधिपूर्वक बनाए हुए यूष के साथ जौ, गेहूँ या चावल का भक्ष्य बनाकर रोगी की रूचि और सात्म्य के अनुसार देना चाहिये। यदि रोगी मद्य पीना चाहता है तो वारुणी नामक मद्य का प्रसार (ऊपर का स्वच्छ भाग) पीने को देना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्यास लगने पर लघुपञ्चमूल से षडङ्ग परिभाषा कल्पना के अनुसार पकाया हुआ जल अथवा धनियां, सोंठ से पकाया हुआ किंवा भूमि आँवला से पकाया हुआ जल पीने को देना चाहिये।[44]

स्वेद

कृशरा, उत्कारिका, उड़द, कुल्थी, यव, पायस और संकर स्वेद से विधिपूर्वक कण्ठ, पार्श्व, छाती और शिर पर स्वेदन करना चाहिये। वातनाशक पत्रों के क्वाथ से अथवा वरियरा, गुरुच, मुलेठी, इनसे पकाये हुए ईषत् गरम क्वाथ से शिर का परिषेक करे। इसके सिवाय नाडीस्वेद व उपनाह स्वेद का भी प्रयोग होते है।[45]

आलेपन

सौंफ, मुलेठी, कूठ, तगर, रक्तचन्दन, इन द्रव्यों को कूट कर जल में पीस करके घृत मिलाकर तथा उष्ण गरम करके शिर, पार्श्व व अंसप्रदेश में लेप करना चाहिये। इससे शिर:शूल, पार्श्वशूल और अंसशूल नाश होता है।[46]

प्रदेह

(1) बरियारा का मूल, रास्ना, काला तिल, मुलेठी, नीलकमल, (2) गुग्गुल, देवदारू,रक्तचन्दन, नागकेशर, (3) काकोली, वरियरा का मूल, विदारीकन्द, सहिजन की छाल, गदहपुरना, (4) शतावर, क्षीरकाकोली, गन्धतृण, मुलेठी इनमें से किसी एक को पीस कर गरम करके घृत मिलाकर प्रदेह लगाना चाहिये[47] इत्यादि।

नस्य आदि का प्रयोग

यक्ष्मा रोग से पीड़ित रोगियों के शिर:शूल, पार्श्वशूल और अंसशूल में आवश्यकतानुसार नस्य, धूम्रपान, भोजन के बाद स्नेहपान, तैल, अभ्यंग के अनेकों योग, वस्तिकर्म तथा दुष्ट हुए रक्त को शृंग, तुम्बी, जोक या सिरावेध द्वारा निकाल देने से शिर:शूल, पार्श्वशूल और अंसशूल नष्ट होता है।[48] नस्य के लिये बरियरा का मूल और विदारीगन्धादि गण से अथवा विदारीकन्द और मुलेठी से सिद्ध किए हुए घृत में सेन्धवनमक मिलाकर प्रयोग करना चाहिये।[49]

वमन-विरेचन

यक्ष्मा रोग से पीड़ित जिन रोगियों में दोषों की अधिकता हो, ऐसे रोगियों का स्नेहन और स्वेदन करने के बाद स्नेहयुक्त मृदु वमन देना चाहिये। वमन के बाद लब्धबल होने पर पुन: स्नेहन और स्वेदन करने के पश्चात् स्नेहयुक्त विरेचन देना चाहिये। पर यह ध्यान रखना चाहिये कि वमन और विरेचन द्वारा रोगी का कर्षण (कृशता) न हो जाय। क्योंकि पुरीष (मल) के निकल जाने से भी रोगी की आत्मा गात्र (शरीररूपी अपने घर) को छोड़ देती है अर्थात् रोगी की मृत्यु हो जाती है, और यदि रोगी के बल का विचार न कर उसके अधिक मात्रा में विरेचन देने से अधिक मल का नि:स्सरण हो जाय तो रोगी की मृत्यु हो सकती हैं।[50]

घृतपान

भोजन करने के बाद अधिक मात्रा में कुछ दिन तक लगातार घृतपान करने से शिर:शूल, पार्श्वशूल, अंसशूल आदि नष्ट होते हैं। दशमूलाद्यघृत अर्थात् दशमूल का क्वाथ, गोदुग्ध, मांसरस और बरियरामूल के कल्क के साथ सिद्ध किये घृत का भोजन के बाद पान करने से शिर:शूल, पार्श्वशूल आदि रोग दूर होते हैं। रोगी को अग्निबल के अनुसार भोजन के पश्चात् या भोजन के मध्य में दूध में रास्नाघृत अथवा बलाघृत मिलाकर पान के लिये देना चाहिये। इसके सिवाय खर्जूरादिघृत, दशमूलघृत व पंचमूलघृत यक्ष्मादि रोग में प्रयोग होते हैं।[51]

लेह

(1) खजूर, पीपर, मुनक्का, हरड़ का छिलका, काकड़ासींगी और दुरालभा, (2) त्रिफला, पीपर, नागरमोथा, सिंघाड़ा, गुड़ और चीनी, (3) क्षीरकाकोली, कचूर, पुहकरमूल, तुलसी का बीज, चीनी और गुड़, (4) सोंठ, चित्रक, धान का लावा, पीपर, ऑवला और गुड़-इन चार लेहों को मधु और घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से यक्ष्मा, कास व श्वास आदि रोग नष्ट होते हैं।[52]

अन्य प्रयोग

यक्ष्मा रोग में सितोपलादिचूर्ण अर्थात् मिश्री, बंशलोचन, पीपर, छोटी इलायची का दाना, दालचीनी-इन पॉच द्रव्यों को अन्त से आदि तक दुगुनी मात्रा में लेकर कपड़छान चूर्ण बनाकर मधु और घी में मिलाकर सेवन करना चाहिए अथवा चूर्ण को सूखा खाकर जल पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त दुरालभाद्यघृत, जीवन्त्यादिघृत, बलादिक्षीर आदि यक्ष्माघ्न हैं।[53]

दैवी चिकित्सा

प्राचीन काल में किया गया तथा वेदों में बताए गए यक्ष्मानाशक यज्ञ द्वारा पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा अथवा आरोग्य कामना करना चाहिये।[54] जैसे ऋग्वेद में कहा गया-

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।[55]

अर्थात् सहस्र नेत्र, सौ वर्ष तक जीनेवाला और सौ वर्ष तक दीर्घजीव से युक्त हवियुक्त-औषधि आदि साधन से इस रोगी को रोग से मुक्त करूंगा। जिससे इस को भगवान इन्द्र सौ वर्ष तक सारे दु:खों के पार पहुंचावे।

यक्ष्मा में पथ्य

बकरी का दूध, जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांसरस, चना, मूंग आदि से यूष निर्माण कर प्रयोग करना चाहिये।[56] इसके अतिरिक्त यक्ष्मा का उपचार अभ्यङ्ग, उब्टन, स्नान, अवगाहन, इन बहि:परिमार्जनों के बस्ति, दूध, घृत, मांस, मांसरस और भात, मन के अनुकूल गन्ध द्रव्यों का सेवन, ऋतु के अनुसार सुखकर स्नान, प्रिय और नूतन स्वच्छ वस्त्र धारण आदि करने से योगराज यह रोग नष्ट हो जाता है[57] इत्यादि।

उपसंहार में कहा जा सकता है कि यक्ष्मा दारुण (भीषण) भयङ्कर और जनसमुदाय को नाश करने वाली महाव्याधि है। यह संक्रामक रोग है, इससे बचने के लिये प्रकाशयुक्त हवादार एवं स्वच्छ कमरे में रहना चाहिये। एक ही कमरे में बहुत आदमियों के साथ या यक्ष्मा रोगी के साथ सोना, भोजन करना और रोगी के पास बहुत देर तक नहीं रहना चाहिये। इस रोग से प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होते है। इस रोग का आधिपत्य केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु विश्व के अन्य देशों में भी हैं। अत: इस रोग से छुटकारा पाने के लिये आयुर्वेदिक औषधि का सहारा लेना चाहिये। क्योंकि यह जड़ से रोग को दूर भगाता है और इसमें कोई दुष्प्रभाव भी नहीं है। आयुर्वेदीय प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता में इस रोग का विस्तर विवरण सह चिकित्सा का समाधान बतलाया गया है। रोग उत्पन्न होते ही सावधान होकर योग्य वैद्य से चिकित्सा कराना चाहिये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.तारिणीश झा और डॉ० घनश्याम त्रिपाठी, अग्निपुराणम्, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, सं-शक 1907 और सन् 1985 ई०

2. डॉ० जियालाल कम्बोज, अथर्ववेद, शिवालिक प्रकाशन, सं-2019

3.कविराज श्री अत्रिदेव गुप्त, अष्टांङ्गहृदयम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, सं-चतुर्थ, वि० संवत् 2027

4.डॉ० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, स्वाध्याय मण्डल प्रकाशन, 1985

5.पं० हेमराज शर्मा, काश्यपसंहिता, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, सं-वि० संवत् 2010

6.ज्योतिर्विद राधिकारमण, गरुडमहापुराणम्, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

7.पं० काशीनाथ शास्त्री और डॉ० गोरखनाथ चतुर्वेदी, चरकसंहिता (भाग-2), चौखम्बा विद्याभवन

8.श्रीपाद दामोदर सावलेकर, तैत्तिरीयसंहिता, स्वाधयाय मण्डल, सं-चतुर्थ

9.आचार्य प्रियव्रत शर्मा, द्रव्यगुण-विज्ञान (द्वितीय-तृतीय भाग), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, सं-तृतीय, वि० संवत् 2032

10.श्री बापालाल ग० वैद्य, निघण्टु आदर्श (पूर्वार्ध), चौखम्बा विद्याभवन, सं-प्रथम, वि० संवत् 2025

11.श्री हरिहरप्रसाद पाण्डेय, भावप्रकाश (द्वितीय भाग), चौखम्बा संस्कृत भवन, सं-वि० संवत् 2077

12.श्री अभय कात्यायन, भेलसंहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, सं-2022

13.श्री जयदेव विद्यालंकार, भैशज्यरत्नावली, मोती लाल बनारसी दास, सं-अष्टम, दिल्ली, 1976

14.श्री सुदर्शन शास्त्री, माधवनिदानम् (पूर्वार्द्ध), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, सं-षष्ठ, वि० संवत् 2033

15.श्रीमद्दयानन्दसरस्वती, यजुर्वेदभाषाभाष्य, वैदिक यन्त्रालय, सं-सम्वत् 2029 विक्रमाब्द

16.कमलेश शर्मा, योगतरंगिणी (भाग-1), स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया), सं-प्रथम, 1923

17.ब्रह्मशंकर शास्त्री, योगरत्नाकर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सं-द्वितीय, वि० संवत् 2029

18.डॉ० कृष्णमणि त्रिपाठी, रघुवंशम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, सं-पुनर्मुद्रित 2023

19.डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, शाङ्र्गधरसंहिता, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, सं-2017

20.अत्रिदेव, सुश्रुतसंहिता, मोतीलाल बनारसी दास, सं-पंचम, दिल्ली, 1975

21.खेमराज श्री कृष्णदास, हारीतसंहिता, श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, सं-शके 1827 संवत् 1962

पाद टिप्पणी

1. ऋग्वेदसंहिता 10/161/1
2. प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद दुहितर आसन ता: सोमाय राज्ञेऽददात् .....।
   तैत्तिरीयसंहिता 2/3/5
3. गरुड़महापुराण (पूर्वखण्ड) 152/2-3
4. रघुवंशम् 19/48
5. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/3-7
6. वही, विमर्श, पृष्ठ 278
7. वही, चिकित्सास्थान 8/11
8. क्षयाद्वेग प्रतीघातादाघाताद्विषमाशनात्।
   जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिन:। सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 41/8-9
9. हारीतसंहिता, तृतीयस्थान 9/105
10. अष्टांगहृदय, निदानस्थान 5/4
11. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/13
12. वही, चिकित्सास्थान 8/14-19
13. वही, चिकित्सास्थान 8/20-22
14. वही, चिकित्सास्थान 8/24-26
15. वही, चिकित्सास्थान 8/28-29
16. सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 41/29
17. नासास्राव: प्रतिश्याय: स्वरभेदश्शिरोरूजा। भेलसंहिता, चिकित्सास्थान 4/4
18. रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं क्षव:।
    प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं वह्निदेहयो:।। अष्टांगहृदय, निदानस्थान 5/7
19. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/33-37
20. सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 41/9-10
21. माधवनिदान 10/2
22. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/40
23. सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 41/12-13
24. अष्टांगहृदय, निदानस्थान 5/13-15
25. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/45-46
26. वही, विमर्श, पृष्ठ 285
27. वही, चिकित्सास्थान 8/48-62
28. वही, चिकित्सास्थान 8/52
29. प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा। यजुर्वेदभाषाभाष्य 1/1
30. अथर्ववेद 12/2/1
31. द्राक्षासितामागमागधिकावलेह: सक्षौद्रतैल: क्षयरोगघाती।
    सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र 41/40
32. भेलसंहिता, चिकित्सास्थान 4/31-81
33. द्वादशाब्दानतीतो वा स्निग्धस्विन्नो वशोधित:।
    पिवेत् क्षीरेण पिप्पल्य: (ली:)। काश्यपसंहिता,चिकित्सास्थान,पृष्ठ 109
34. शाङ्र्गधरसंहिता (मध्यमखण्ड) 6/17-20
35. भावप्रकाश (द्वितीय भाग) 11/41-57
36. पयस्यापिप्पलीवासाकल्कं सिद्धं क्षये हितम्। अग्निपुराणम् 285/55
37. द्विपंचमूलीजलसिद्धमाज्यं वासाघृतं वाप्यथ षट्पलं वा। योगतरंगिणी (भाग-1) 24/8
38. भैषज्यरत्नावली, राजयक्ष्माधिकार, श्लोकसं-19, पृष्ठ 246
39. योगरत्नाकर, राजयक्ष्माचिकित्सा, पृष्ठ 368
40. द्रव्यगुण विज्ञान, पृष्ठ 220
41. निघण्टु आदर्श(पूर्वार्ध), पृष्ठ 300
42. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/63
43. अष्टांगहृदय, चिकित्सास्थान 5/5-7
44. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/66-70
45. वही, चिकित्सास्थान 8/71-76
46. वही, चिकित्सास्थान 8/77
47. वही, चिकित्सास्थान 8/78-80
48. वही, चिकित्सास्थान 8/81-82
49. वही, चिकित्सास्थान 8/90
50. वही, चिकित्सास्थान 8/87-88
51. वही, चिकित्सास्थान 8/92-99
52. वही, चिकित्सास्थान 8/100-102
53. वही, चिकित्सास्थान 8/103-115
54. वही, चिकित्सास्थान 8/189
55. ऋग्वेद 10/161/3
56. चरकसंहिता (द्वितीय भाग), चिकित्सास्थान 8/116
57. वही, चिकित्सास्थान 8/184-188